जैन
पथप्रदर्शक
ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)
नैतिक एवं सामाजिक चेतना का अग्रदूत निष्पक्ष पाक्षिक

बाहुबली का विशाल जिनबिम्ब ऐसा है कि लोग दर्शन करते समय मूर्ति के ही गीत गाते दिखाई देते हैं, मूर्तिमान की ओर उनका ध्यान ही नहीं जाता।

ह्न गोमटेश्वर बाहुबली, पृष्ठ: 5

वर्ष : 28, अंक : 18 | **सम्पादक :** पण्डित रतनचन्द भारिल्ल | आजीवन शुल्क : 251 रुपये
दिसम्बर (द्वितीय) 2005 | **प्रबन्ध सम्पादक :** पं. संजीवकुमार गोधा व पं. जितेन्द्र वि. राठी | वार्षिक शुल्क : 25 रु., एक प्रति : 2/-

आ. कुन्दकुन्द का आचार्य पदारोहण दिवस मनाया

गुना (म.प्र.) : यहाँ श्री शांतिनाथ दि. जैन बाजार मंदिर में आचार्य कुन्दकुन्दस्वामी के आचार्य पदारोहण पर दिनांक 24 नवम्बर को आचार्य कुन्दकुन्द की विशेष पूजन की गई। रात्रि में अनेक वक्ताओं ने आचार्य कुन्दकुन्द के जीवन-दर्शन एवं सैद्धान्तिक विषयों पर प्रकाश डाला।

इसके पूर्व दिनांक 23 नवम्बर को गुरुदेवश्री कानजीस्वामी की पुण्यतिथि पर पण्डित राजकुमारजी शास्त्री गुना के प्रवचन का लाभ मिला तथा गुरुदेवश्री को भावभीनी श्रद्धांजलि दी गई।

कार्यक्रम पण्डित अनिलकुमारजी शास्त्री एवं श्री केवलचन्दजी पाण्ड्या के निर्देशन में सम्पन्न हुये।

राजस्थान एवं कर्नाटक में धर्मप्रभावना

1. आचार्य कुन्दकुन्द चल शिक्षण-संस्थान केशवनगर-उदयपुर के तत्त्वावधान में आयोजित चल शिक्षण-शिविरों की शृखंला में दिनांक 10 सितम्बर से 3 नवम्बर, 2005 तक राजस्थान के लकड़वास, लूणदा, साकरोदा तथा उदयपुर के गायरियावास एवं नेमीनाथ कॉलोनी में आठ-आठ दिवसीय शिक्षण शिविरों का आयोजन किया गया।

इस अवसर पर पण्डित अश्विनकुमारजी नानावटी घाटोल के सभी स्थानों पर समयसार, भावदीपिका, मोक्षमार्गप्रकाशक, निमित्तोपादान, द्रव्य-गुण-पर्याय, चार अभाव, निश्चय-व्यवहार, सात तत्त्व आदि विभिन्न विषयों पर मार्मिक प्रवचन हुये। लगभग सभी स्थानों पर पूजन-विधान, बाल कक्षा, प्रौढ कक्षा, सांस्कृतिक कार्यक्रमों के माध्यम से भी महती धर्मप्रभावना हुई।

2. श्री टोडरमल दि. जैन सि. महाविद्यालय के स्नातक पण्डित राजेन्द्रकुमारजी पाटील, एलिमुन्नोली द्वारा नवम्बर माह में श्रवणबेलगोला तथा आस-पास के विभिन्न गाँवों में प्रवचन, प्रौढकक्षा, बालकक्षा के माध्यम से धर्मप्रभावना की गई।

साथ ही सभी स्थानों पर पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट का परिचय दिया गया। ज्ञातव्य है की आप विगत पाँच-छह माह से श्रवणबेलगोला में रहते हुए महामस्तकाभिषेक की तैयारियों हेतु अपना योगदान दे रहे हैं। **ह्न श्रीमंत नेज**

विधान एवं शिलान्यास सम्पन्न

टीकमगढ़ (म.प्र.) : यहाँ श्री 1008 सीमंधर जिनालय में दिनांक 16 एवं 17 नवम्बर को रत्नत्रय विधान एवं मंगलधाम का शिलान्यास कार्यक्रम रखा गया।

इस अवसर पर ब्र. सुमतप्रकाशजी खनियांधाना एवं पण्डित महेन्द्रजी शास्त्री इन्दौर का सान्निध्य प्राप्त हुआ। शिलान्यास श्रीमती पुष्पा चौधरी एवं परिवार द्वारा सम्पन्न कराया गया।। **– सुरेश जैन**

शांति विधान का आयोजन

जयपुर (राज.) : यहाँ दि. जैन मंदिर शास्त्री नगर में शांति विधान का आयोजन किया गया। इस प्रसंग पर डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के प्रवचन का लाभ मिला तथा यहाँ संचालित लिखित प्रश्नोत्तरी का परिणाम घोषित किया गया; जिसका पुरस्कार वितरण पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल के करकमलों से हुआ।

गोष्ठी सानन्द सम्पन्न

1. **जयपुर (राज.) :** यहाँ श्री टोडरमल दि. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय द्वारा आयोजित साप्ताहिक गोष्ठीयों की श्रृंखला में दिनांक 30 नवम्बर, 2005 को **नैगमादि सप्त नय** विषय पर गोष्ठी आयोजित की गई।

गोष्ठी की अध्यक्षता पण्डित संजीवकुमारजी गोधा ने की; उन्होंने अपने उद्बोधन में नयों के समस्त भेदों पर सामान्य प्रकाश डाला।

संचालन सौरभ जैन एवं मंगलाचरण विवेक जैन ने किया। गोष्ठी में शास्त्रीवर्ग से कमलेश जैन एवं उपाध्यायवर्ग से गजेन्द्र जैन ने श्रेष्ठ स्थान प्राप्त किया।

2. इसी श्रृंखला में दिनांक 4 दिसम्बर, 05 को **आत्मा की शक्तियाँ** विषय पर आयोजित गोष्ठी की अध्यक्षता डॉ. दीपकजी जैन ने की। गोष्ठी में शास्त्री वर्ग से अतुल जैन एवं सी.बाबू ने श्रेष्ठ स्थान प्राप्त किया। संचालन अनुराज जैन व मंगलाचरण अभिषेक जैन ने किया।

ह्न संयोजक, कमलेश एवं शाकुल जैन

परीक्षा केन्द्र ध्यान दें

श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड ए-४, बापूनगर, जयपुर-१५ की शीतकालीन परीक्षा जनवरी २००६ हेतु प्रवेश फार्म आमंत्रित हैं।

संबंधित समस्त परीक्षा केन्द्रों को खाली प्रवेशफार्म डाक से भिजवा दिये हैं। जिन केन्द्रों को अभीतक खाली प्रवेशफार्म प्राप्त नहीं हुये हों, वे कृपया तत्काल पत्र लिखकर मंगवा लेवें।

ह्न ओमप्रकाश आचार्य,
प्रबन्धक : परीक्षा विभाग

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रभावना योग से लन्दन में

श्री 1008 महावीरस्वामी दिगम्बर जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव

(शुक्रवार, दिनांक 4 अगस्त 2006 से बुधवार, दिनांक 9 अगस्त 2006 तक)

अत्यंत हर्षोल्लास का विषय है कि श्री वृषभादि महावीरपर्यंत चौबीस तीर्थंकरों एवं कुन्दकुन्दादि आचार्यों की पावन प्रेरणा से प्रवाहित वीतरागी तत्त्वज्ञान के रहस्योद्घाटक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के पुण्य प्रभावना योग से देश-विदेश में अध्यात्मवाणी का व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ है। इसी शृंखला में सम्पूर्ण देश में सैंकडों जिनमन्दिरों का निर्माण हुआ तथा हो रहा है। गुरुदेवश्री की सदेह उपस्थिति में ही नैरोबी (अफ्रिका) में प्रथम जिनमन्दिर का निर्माण होकर पंचकल्याणक महोत्सव का भव्य आयोजन सम्पन्न हुआ था।

अब पुन: विदेश में दिगम्बर जैन शुद्ध तेरापंथ एवं आध्यात्मिक तत्त्वज्ञान के पोषक जिनमन्दिर के निर्माण एवं पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव का अवसर प्राप्त हुआ है । यहाँ वर्ष 2001 में जिनमंदिर का निर्माण पूर्ण हो गया था, तत्पश्चात् दिनांक 24 अगस्त 2003 को गुरुदेवश्री द्वारा प्रतिष्ठित राणपुर (सौराष्ट्र) जिनमंदिर से **भगवान पार्श्वनाथ की 11 इंच** उन्नत अष्ट धातु की प्रतिमा के शुभागमन एवं विराजमान होने से यहाँ निरन्तर दर्शन-पूजन एवं स्वाध्याय का लाभ प्राप्त होता है साथ ही अनेक आध्यात्मिक विद्वानों का लाभ भी मिलता है। यहाँ के स्वाध्याय कक्ष में माँ जिनवाणी के अतिरिक्त आचार्य भगवन्तों व ज्ञानी धर्मात्माओं के चित्रपट भी स्थापित हैं।

इसी जिनमंदिर में विराजमान होनेवाले **तीर्थनायक भगवान महावीरस्वामी की धवल पाषाण से निर्मित 61 इंच उन्नत पद्मासन जिनप्रतिमा** भारत से लंदन पहुँच चुकी है। जिसे प्रतिष्ठापूर्वक विराजमान करने हेतु आगामी **दिनांक 4 अगस्त से 9 अगस्त 2006 तक** विशाल पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव आयोजित करने का निर्णय लिया गया है। पंचकल्याणक महोत्सव के **विधिनायक भगवान महावीरस्वामी** होंगे।

प्रतिष्ठा महोत्सव की सम्पूर्ण विधि प्रतिष्ठाचार्य **बा. ब्र. अभिनन्दनकुमारजी शास्त्री खनियांधाना** द्वारा सम्पन्न कराई जायेगी तथा प्रतिष्ठा महोत्सव के निर्देशन हेतु पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के अन्त:वासी **पण्डित चन्दूभाई जोबालिया सोनगढ़** को आमंत्रण भेज दिया गया है। इस अवसर पर **डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल जयपुर** आदि अनेक विशिष्ट विद्वानों के मांगलिक प्रवचनों का लाभ प्राप्त होगा।

विश्वव्यापी समस्त आत्मार्थी मुमुक्षु समाज से निवेदन है कि नर से नारायण, आत्मा से परमात्मा बनने के प्रतीक इस महामंगल महोत्सव में पधारकर लोकातीत जीवन का निर्माण करें।

अपने पधारने की पूर्वसूचना अपेक्षित सूचनाओं के साथ अतिशीघ्र हमें प्रेषित करें, जिससे आपके आवासादि की समुचित व्यवस्था की जा सकें। यदि आपके पासपोर्ट न बने हों तो अभी से कार्यवाही प्रारम्भ कर दें, जिससे वीजा आदि की कार्यवाही सुनिश्चित हो सके।

● लन्दन प्रतिष्ठा में पधारने के इच्छुक प्रत्येक व्यक्ति का नाम, आयु, प्रतिष्ठा महोत्सव में कितने दिन और कौन-कौनसी तारीख के लिए आवास चाहिए की सूचना प्रदान करें तथा आवासादि की अनुमानित व्यय राशि **विशेष व्यवस्था हेतु दो हजार रुपये, मध्यम व्यवस्था हेतु एक हजार पाँच सौ रुपये** एवं **सामान्य व्यवस्था हेतु एक हजार रुपये प्रति व्यक्ति प्रति दिन** के हिसाब से 15 जनवरी 2006 तक जमा करा देवें।

● जिन साधर्मियों के पास रहने की निजी व्यवस्था हो, वे अपने नाम, उम्र, प्रतिष्ठा के कितने व कौन-कौनसे दिन लाभ लेना चाहेंगे, यह जानकारी शीघ्र प्रदान करें, जिससे आपके भोजन और ट्रांसपोर्ट आदि की व्यवस्था करने में सुगमता हो सके ।

उक्त जानकारी निम्नांकित किसी भी पते पर 15 जनवरी 2006 के पूर्व प्रदान करने की कृपा करें। हमें आपकी स्वीकृति की प्रतीक्षा रहेगी। आपकी सभी व्यवस्थाओं को करके हमें हार्दिक प्रसन्नता होगी।

1. श्री हितेनभाई सेठ, श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, कृष्ण कुंज, वी.एल. मेहता मार्ग, विले पार्ले (वे.) मुम्बई
   E-mail : kahanraj@mtnl.net.in Tel: (022) 26130820
2. श्री पवन जैन, तीर्थधाम मंगलायतन, अलीगढ-आगरा मार्ग, सासनी, जिला- महामायानगर (उ.प्र.) 204216
   E-mail : enquiry@pavnagroup.com & nairkcd@yahoo.com
   Tel: (0571) 2410395, 2410010, Fax : (0571) 2410019

*** निवेदक ***

दिगम्बर जैन एसोसिएशन

भगवान श्री महावीर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा समिति, लन्दन

अध्यक्ष, डॉ. दिनकरभाई शाह   **मंत्री,** श्रीमती शीतल विजेन शाह

Correspondence Address : 52 Powys Lane, Palmers Green, London N13 4HS
Website: www.londonpratishta.com, E-mail: info@londonpratishta.com

सम्पादकीय –

नींव का पत्थर

16

ह्न रतनचन्द भारिल्ल

राग–द्वेष की जड़ : पर कर्तृत्व की मान्यता

जो अन्य के सुख दुःख का, कर्त्ता स्वयं को मानते।
वे वस्तु के स्वातंत्र्य के, सिद्धान्त को नहीं जानते॥
पोषण किया करते निरन्तर, क्रोध–मान कषाय का।
शोषण सदा होता रहा, सुख–शान्ति सहज स्वभाव का॥

महावीर जयन्ती पर आयोजित संगोष्ठी के द्वितीय सत्र में प्रमुख वक्ता के रूप में बोलते हुए विराग ने अपना वक्तव्य अपने अनुभूत उदाहरण से प्रारंभ किया। उसने कहा ह्न ''देखो, हम सबने खासकर माँ ने पिताजी की बीमारी को ठीक करने के लिए क्या–क्या प्रयत्न नहीं किए, पर क्या कर पाये हम? एलोपेथी, होम्योपेथी, नेचरोपेथी आदि सभी पेथियाँ छान मारी। आयुर्वेद, यूनानी, मालिस, एक्यूप्रेशर, एक्यूपंक्चर, आसन, प्राणायाम आदि कुछ भी तो नहीं छोड़ा। सभी को आजमा–आजमा कर देखा; पर कहीं कोई सफलता नहीं मिली।

अन्त में वस्तु स्वातंत्र्य के सहारे और क्रमबद्धपर्याय के आलम्बन से अपनी आकुलता को कम करते हुए आर्तध्यान–रौद्रध्यान से बचने के लिए चौबीस तीर्थंकरों का स्तवन, पंचपरमेष्ठियों का स्मरण और वैराग्यवर्द्धक वैराग्य भावना एवं बारह भावनाओं को हम भी पढ़ते रहे और कैसिटों के माध्यम से पिताजी को भी सुनाते रहे।

पिताजी भी शेष जीवन में समाधि की साधना करते हुए कैसिटों के साथ स्वयं भी उन्हीं पाठों को गुन–गुनाते रहे। जब स्वस्थ होने का काल पका तो बाह्य निमित्त तीर्थंकर स्तवन और अंतरंग निमित्त रूप असाता कर्म प्रकृति साता में पलट गईं। उसी समय अन्तर्मुखी उग्र पुरुषार्थ के साथ भली होनहार से ऐसा बनाव बना कि ह्न कल महावीर जयन्ती महोत्सव की मंगल बेला में उनका गला खुल गया। उनके कंठ से संगीतमय गाथाओं एवं स्तवन के स्वर स्पष्ट सुनाई देने लगे। पास जाकर देखा तो वे महावीराष्टक बोल रहे थे, तीर्थंकर स्तवन कर रहे थे।

पिताजी की इस घटना से सिद्ध होता है कि ह्न किसी के करने से कुछ नहीं होता। जगत का सारा परिणमन स्वयं अपने–अपने पाँच समवायों से एवं स्वयं के स्वतंत्र षट्कारकों से होता है।

अफसोस यह कि सामान्यजन तो स्वयं को दूसरों के सुख–दुःख का कर्ता और दूसरों को अपने सुख–दुःख का कर्ता मानकर दूसरों पर राग–द्वेष करके हर्ष–विषाद करते ही हैं, स्वयं को धर्मात्मा और ज्ञानी मानने वाले भी इस पर के कर्तृत्व की मान्यता में ही उलझे रहकर राग–द्वेष से नहीं उबर पाते। इसका मूल कारण निमित्त–नैमित्तिक संबंधों की घनिष्ठता है।

इस कर्त्ता–कर्म सम्बन्ध की भूल को निकालने के लिए समयसार परमागम का पूरा कर्ता–कर्म अधिकार और सर्वविशुद्ध अधिकार समर्पित है ह्न जिसको आगम और युक्तियों के आधार से परद्रव्य के अकर्तृत्व की सशक्त चर्चा के बाद यदि हम दैनिक जीवन में २४ घंटे घटित होती घटनाओं का भी सूक्ष्म अवलोकन करें तो प्रायोगिक रूप से भी यही सिद्ध होगा कि कोई भी एक द्रव्य किसी अन्य द्रव्य का कर्ता–हर्ता नहीं हो सकता; क्योंकि विश्व की सम्पूर्णसृष्टि आटोमेटिक स्व–संचालित है।''

मुख्य वक्ता के रूप में अपने विषय का प्रतिपादन करते हुए विराग ने अपने व्याख्यान में आगे कहा ह्न ''समयसार के कर्त्ता–कर्म अधिकार में वस्तुस्वातन्त्र्य या छहों द्रव्यों के स्वतंत्र परिणमन का निरूपण प्रकारान्तर से परद्रव्य के अकर्तृत्व का ही निरूपण है। यह अकर्तावाद का सिद्धान्त आगमसम्मत युक्तियों द्वारा एवं सिद्धान्तशास्त्रों की पारिभाषिक शब्दावलियों द्वारा तो स्थापित है ही, साथ ही अपने व्यावहारिक लौकिक जीवन को निराकुल सुखमय बनाने में भी इसकी उपयोगिता असंदिग्ध है।

आगम के दबाव और युक्तियों की मार से सिद्धान्ततः अकर्तृत्व को स्वीकार कर लेने पर भी अपने दैनिक जीवन की छोटी–मोटी पारिवारिक घटनाओं के सन्दर्भ में उन सिद्धान्तों के प्रयोगों द्वारा आत्मिक शान्ति और निष्कषाय भाव रखने की बात जगत के गले आसानी से नहीं उतरती, उसके अन्तर्मन को सहज स्वीकृत नहीं होती; जबकि हमारे धार्मिक सिद्धान्तों की सच्ची प्रयोगशाला तो हमारे जीवन का कार्यक्षेत्र ही है।

क्या अकर्तावाद जैसे संजीवनी सिद्धान्त केवल शास्त्रों की शोभा बढ़ाने या बौद्धिक व्यायाम करने के लिए ही हैं? अपने व्यवहारिक जीवन में प्रामाणिकता, नैतिकता, निराकुलता एवं पवित्रता प्राप्त करने में इनकी कुछ भी भूमिका–उपयोगिता नहीं है? यह एक अहं प्रश्न है।

जरा सोचो तो सही, अकर्तृत्व के सिद्धान्त के आधार पर जब हमारी श्रद्धा ऐसी हो जाती है कि **'कोई भी जीव किसी अन्य जीव का भला या बुरा कुछ भी नहीं कर सकता'**, तो फिर हमारे मन में अकारण ही किसी के प्रति राग–द्वेष–मोहभाव क्यों होंगे?

यहाँ यह प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि ह्न अकर्तृत्व की सच्ची श्रद्धा वाले ज्ञानियों के भी क्रोधादि भाव एवं इष्टानिष्ट की भावना प्रत्यक्ष देखी जाती है तथा उनके मन में दूसरों का भला–बुरा या बिगाड़–सुधार करने की भावना भी देखी जाती है ह्न इसका क्या कारण है?

समाधान सरल है, यद्यपि सम्यग्दृष्टि की श्रद्धा सिद्धों जैसी पूर्ण निर्मल होती है, तथापि वह चारित्रमोह कर्मोदय के निमित्त से एवं स्वयं के पुरुषार्थ की कमी के कारण दूसरों पर कषाय करता हुआ भी देखा जा सकता है; पर सम्यग्दृष्टि उसे अपनी कमजोरी मानता है। उस समय भी उसकी श्रद्धा में तो यही भाव है कि ह्न 'पर ने मेरा कुछ भी बिगाड़–सुधार नहीं किया है।' अतः उसे उसमें अनन्त राग–द्वेष नहीं होता। उत्पन्न हुई कषाय को यथाशक्ति कृश करने का पुरुषार्थ भी अन्तरात्मा में निरन्तर चालू रहता है।

(शेष पृष्ठ 10 पर....)

सागर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव का विज्ञापन

सागर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव का विज्ञापन

तत्त्वचर्चा

प्रवचनसार का सार

41

ह्न डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

(गतांक से आगे...)

अरे भाई ! अतिव्याप्ति, अव्याप्ति ह्न ये दोष न्यायशास्त्र की मुख्यता से हैं। यहाँ तो आचार्यदेव ने यह परिभाषा इसलिए बनाई है कि इस जीव को यह समझ में आ जाय कि चक्षु आदि इन्द्रियों से जो भी दिख रहा है, वह सब पुद्‌गल है, आत्मा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ।

सिद्ध भगवान बिना इन्द्रियों के जिन पदार्थों को देखते-जानते हैं; उनमें परमाणु भी है, जो स्थूल इन्द्रियों के द्वारा पकड़ में नहीं आता। स्कन्ध इन्द्रियों के द्वारा ग्राह्य है और परमाणु इन्द्रियों के द्वारा ग्राह्य नहीं है तो क्या वह पुद्‌गल नहीं है ? परमाणु इतना सूक्ष्म है कि वह चक्षु इन्द्रिय की पकड़ में नहीं आता; परन्तु वही परमाणु जब अनेक परमाणुओं से मिलता है, तब वह स्कन्ध बन जाता है। इससे आशय यह है कि परमाणु में भी वह तत्त्व विद्यमान है, जो इन्द्रियों के द्वारा ग्राह्य हैं; परन्तु हमारी इन्द्रियविशेष की यह कमजोरी है कि उतनी सूक्ष्म चीज को हम देख नहीं सकते हैं।

सुई का छेद देखने में तो आता है; परन्तु कोई कहे कि मुझे दिखता नहीं है तो वह उसकी बात है। यदि उसे सुई का छेद आँख से दिखाई नहीं देता तो उसे चश्मा लगवा लेना चाहिए। यदि उसकी आँख से सुई का छेद दिखाई नहीं देता तो इसका अर्थ यह तो नहीं हो सकता कि सुई का छेद आँखों के दिखता ही नहीं है।

हवा भी पुद्‌गल है, वह भी चक्षु इन्द्रिय से जानने में नहीं आती; किन्तु रूप तो उस हवा में भी है; फिर भी वह चक्षुइन्द्रिय से देखने में नहीं आता है।

आचार्यदेव ने तर्क-वितर्क से यह सिद्ध किया है कि उसमें वे तत्त्व विद्यमान हैं, जो इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण करने में आते हैं; परन्तु हमारे ही इन्द्रिय -विशेष की कमजोरी है कि जिसके कारण से हमें नहीं दिखते।

यहाँ यह प्रश्न किया है कि शब्द गुण है या पर्याय ?

स्पर्श स्पर्शनेन्द्रिय द्वारा ग्राह्य है, रस रसनेन्द्रिय द्वारा ग्राह्य है, गंध घ्राणेन्द्रिय द्वारा ग्राह्य है; रूप चक्षु इन्द्रिय द्वारा ग्राह्य है और शब्द कर्ण इन्द्रिय द्वारा ग्राह्य है। वैशेषिक शब्दों को आकाश का गुण कहते हैं; परन्तु जैनदर्शन इसे पुद्‌गल की पर्याय मानता है। गुण तो त्रिकाली होते हैं; परन्तु शब्द कादाचित्क हैं अर्थात वे कभी होते हैं और कभी नहीं होते हैं। पर्याय का लक्षण कादाचित्क अर्थात् कभी होना और कभी नहीं होना है। शाश्वत रहना वह गुण का लक्षण है। शब्द में गुण का लक्षण नहीं पाया जाता; इसलिए वह पर्याय है।

तब फिर यह प्रश्न होता है कि इन शब्दों में स्पर्श-रस-गंध-वर्ण तो देखने में आते नहीं हैं, हम उसे कैसे ग्रहण करें ? तो आचार्य कहते हैं कि यह पुद्‌गल है, मूर्तिक है और कर्णेन्द्रिय के द्वारा गोचर है।

कुन्दकुन्दाचार्य देव इतना सामान्य वर्णन अपने शिष्यों के लिए कर रहे हैं। क्या उनके मुनि शिष्य छह द्रव्यों का स्वरूप नहीं जानते होंगे ?

जानते होंगे, अवश्य जानते होंगे; परन्तु आचार्यों की यह रीति रही है कि किसी वस्तु का प्रतिपादन व्यवस्थित ढंग से करना है तो उसमें से सरल प्रकरणों को निकाल नहीं सकते, उन्हें भी लेना पड़ेगा और कठिन प्रकरणों को भी लेना पड़ेगा। तभी उसका सर्वांग विवेचन होगा।

यदि मैं सरल-सरल व्याख्यान करूँ और कठिन विषय छोड़ दूँ तो ग्रन्थ अधूरा रह जायेगा एवं कठिन-कठिन विषय रखूँ और सरल छोड़ दूँ तो भी ग्रन्थ अधूरा रह जायेगा।

इस ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापन महाधिकार में प्रथम द्रव्यसामान्य का वर्णन किया, उसमें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, सादृश्यास्तित्व, स्वरूपास्तित्व इत्यादि का सूक्ष्मता से वर्णन किया एवं तदुपरान्त 6 द्रव्यों का वर्णन किया। इसप्रकार आचार्यदेव समग्र वर्णन कर रहे हैं; अत: भले ही विषयवस्तु सरल हो; फिर भी संक्षेप में उसका वर्णन करते हैं।

यद्यपि हम आपको आत्मा से संबंधित तत्त्व की गहरी बात बताना चाहते हैं; परन्तु चर्चा का आरंभ तो यहीं से होगा। आत्मा देह में विराजमान है; परन्तु देह से भी भिन्न है ह्न यह स्थूल प्रकरण है और केवलज्ञान से भिन्नता की बात सूक्ष्म है; तथापि चर्चा का आरंभ तो देह की भिन्नता से ही होगा।

यदि हम ऐसा कहें कि केवलज्ञान से भिन्न है, राग से भी भिन्न है, देह से भी भिन्न है; तो इसमें भी क्रमभंग नामक दोष आता है।

बिहारी महाकवि हिन्दी साहित्य के श्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। उन्होंने बिहारी सतसई लिखी है, जिसके बारे में यह कहा जाता है कि ह्न

सतसैया के दोहरे, ज्यों नाविक के तीर।
देखन में छोटे लगे, घाव करें गंभीर।।

बिहारी कवि के ही समकालीन एक 'देव' नामक कवि हुए हैं। बिहारी की तुलना में देव ने बहुत किताबें लिखी हैं। बिहारी ने मात्र 700 दोहे लिखे; जबकि देव ने 72 किताबें लिखी हैं, जिसमें मनहर कवित्त जैसे बड़े-बड़े छन्द हैं। मनहर कवित्त को इकतीसा सवैया भी कहा जाता है; जिसकी एक पंक्ति में 31 अक्षर होते हैं।

देव ने 72 किताबें लिखी हैं; परन्तु 99 प्रतिशत समीक्षकों का यही मत है कि बिहारी देव से भी महान कवि हैं; क्योंकि बिहारी में कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक बात कहने की क्षमता है; परन्तु बिहारी का एक दोहा ऐसा है, जिसे हमेशा क्रमभंग नामक दोष के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जाता है; वह इसप्रकार है ह्न

कोई कोटिक संग्रहो, कोई लाख हजार।
मौ संपत्ति यदुपति सदा, विपत्ति विदारनहार।।

कोई करोड़ रुपया एकत्र करे, कोई लाख, कोई हजार रुपये एकत्र करे; परन्तु मेरी संपत्ति तो विपत्ति को दूर करनेवाले एक श्रीकृष्ण ही हैं।

सभी समीक्षक कहते हैं कि इतने बड़े कवि ने इतनी बड़ी गलती कैसे की? कोई हजारों, कोई लाखों, कोई करोड़ों संग्रहोह्न ऐसा कहना चाहिए था; परन्तु उन्होंने उल्टा कहा है ह्न अत: यह छन्द क्रमभंग दोष से दूषित है।

जैसे हम आपसे कहें कि देखो भाई ! आपको हमारी संस्था के लिए चंदा के रूप में एक हजार रुपये देना पड़ेंगे; एक हजार रुपये नहीं दे सकते तो एक लाख रुपये दे दो, एक लाख रुपये नहीं देंगे तो एक करोड़ से कम तो हम लेंगे ही नहीं। ऐसा कहनेवाला व्यक्ति पागल ही माना जायेगा। यदि वह कहे कि एक करोड़ देने पड़ेंगे, करोड़ नहीं तो लाख दो, लाख नहीं तो हजार दो, एक सौ एक तो लेकर ही रहूँगा ह्न इसे हम क्रम से बोलना कहते हैं।

ऐसे ही मैं देह नहीं हूँ, मैं राग नहीं हूँ, मैं सम्यग्दर्शन नहीं हूँ, मैं केवलज्ञान नहीं हूँ ह्न यह क्रम होना चाहिए; परन्तु हम बिहारी जैसी गलती कर रहे हैं; क्योंकि हम केवलज्ञान से शुरू करते हैं।

इसतरह विभिन्न रीति से जो इन्द्रियों से ग्राह्य हैं; वे मूर्त हैं। इसकी चर्चा देशनालब्धि के परिप्रेक्ष्य में की।

यहाँ आचार्य ने द्रव्यों को सप्रदेशी और अप्रदेशी में भी विभाजित किया है। आचार्य कहते हैं कि कालद्रव्य एकप्रदेशी हैं, आकाशद्रव्य अनंतप्रदेशी है, जीवद्रव्य असंख्यातप्रदेशी हैं, धर्म और अधर्मद्रव्य भी असंख्यातप्रदेशी हैं और पुद्गलद्रव्य निश्चय से एकप्रदेशी और व्यवहार से संख्यातप्रदेशी, असंख्यात और अनंतप्रदेशी है।

इसप्रकार इन 18 गाथाओं में आचार्यदेव ने जीव-अजीव का वर्णन किया, छहों द्रव्यों के नाम गिनाये; जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश एवं कालद्रव्य की परिभाषाएँ दी। तत्पश्चात् लोक-अलोक, सक्रिय-निष्क्रिय, इस अपेक्षा से छहो द्रव्यों में भेद उपस्थित किये। फिर मूर्त-अमूर्त, सप्रदेशी-अप्रदेशी का भेद उपस्थित किया।

इसप्रकार आचार्यदेव ने यहाँ द्रव्यविशेष की चर्चा पूर्ण की है।

145 वीं गाथा की उत्थानिका में ही आचार्य अमृतचन्द्र लिखते हैं। अब इसप्रकार ज्ञेयतत्त्व कहकर, ज्ञान और ज्ञेय के विभाग द्वारा आत्मा को निश्चित करते हुए, आत्मा को अत्यन्त विभक्त (भिन्न) करने के लिए व्यवहारजीवत्व के हेतु का विचार करते हैं।

इसप्रकार से यहाँ ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापन महाधिकार समाप्त ही हो गया समझो; क्योंकि सामान्य ज्ञेय और विशेष ज्ञेय ह्न दोनों प्रकार से ज्ञेयों की चर्चा हो चुकी है; किन्तु आत्मकल्याण की दृष्टि से ज्ञानतत्त्व और ज्ञेयतत्त्व ह्न इन दोनों की पृथक्ता बताना अत्यन्त आवश्यक है। यही कारण है कि आचार्यदेव उक्त दोनों अधिकारों के बाद ज्ञान और ज्ञेय में अन्तर बतानेवाले अधिकार को आरंभ करते हैं।

यद्यपि मैं ज्ञानतत्त्व हूँ; तथापि मैं ज्ञेयतत्त्व भी हूँ। अब यहाँ प्रश्न यह है कि ज्ञानतत्त्व में भी आत्मा की चर्चा है एवं ज्ञेयतत्त्व में भी आत्मा की ही चर्चा है। दोनों ही स्थानों पर एक आत्मा की ही चर्चा क्यों की गई ?

अरे भाई ! ज्ञानतत्त्वप्रज्ञापन में जाननेवाले आत्मा की चर्चा की गई है और ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापन में जानने में आनेवाले आत्मा की चर्चा की गई है।

वस्तुत: बात यह है कि 'वह आत्मा जाननेवाला है' ह्न ऐसा हमें जानना है।

एक शादी का निमंत्रण-पत्र आया। लड़केवालों की तरफ से भी आया और लड़कीवालों की तरफ से भी। वे लड़के के दूर के मामा लगते हैं और लड़की के भी कुछ न कुछ लगते हैं। इसप्रकार वह व्यक्ति वरपक्ष में एक हैसियत से आया है और वधूपक्ष में दूसरी हैसियत से।

समझ लीजिए दो भाईयों की शादी दो बहनों से हुई। पहले शादी तो बड़े भाई की ही होगी। बड़ा भाई अपने छोटे भाई की बारात में जायेगा तो वह दोनों तरफ से शामिल होगा। एक पक्ष से अपने छोटे भाई के शादी में जा रहा है और दूसरे पक्ष में अपनी साली की शादी में जा रहा है। वह दोनों पक्षों में दो भिन्न हैसियत से खड़ा है।

ऐसे ही यह भगवान आत्मा ज्ञानतत्त्वप्रज्ञापनाधिकार में जाननेवाले तत्त्व के रूप में उपस्थित है एवं ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापनाधिकार में जानने में आने वाले तत्त्व के रूप में उपस्थित है। चूँकि इस आत्मा का स्वभाव जानना है। जानने में जो आत्मा आ रहा है, वह आत्मा भी जाननेवाला तत्त्व है। अत: उसे इसीरूप में जाना जावेगा; क्योंकि इसमें जानने का गुण विद्यमान है। ●

सोलहवाँ प्रवचन

अब ज्ञानतत्त्व आत्मा और ज्ञेयतत्त्व सभी पदार्थ, जिसमें अपना आत्मा भी शामिल है; उनमें स्व-पर के विभागपूर्वक भेदविज्ञान करने की चर्चा करनी है।

इस ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापन महाधिकार में अभी तक समान्यज्ञेय और विशेषज्ञेय की चर्चा हुई। इसके बाद स्व और पर में भेदविज्ञान की मुख्यता से अध्यात्म की चर्चा है।

यहाँ '**आलोचयति** अर्थात् अलोचना करते हैं' इस पंक्ति में प्रयुक्त आलोचना शब्द का तात्पर्य बुराई नहीं है; अपितु आलोचना का अर्थ यह है कि उस विषय के संबंध में गहराई से मंथन करते हैं।

यदि कोई यहाँ आलोचना शब्द को बुराई के अर्थ में भी ले तो भी कोई बात नहीं है; क्योंकि आचार्य आलोचना करने के बाद यह कहेंगे कि व्यवहाजीव तो मात्र कहने का जीव है, वास्तव में जीव नहीं है। चैतन्यस्वभावी निश्चयजीव ही, वास्तव में जीव है।

अब, यहाँ विशेष समझने की बात यह है कि आचार्यदेव ने जब ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापन महाधिकार शुरू किया था तो उसके प्रारम्भ में **पर्यायमूढ़ ही परसमय है** ह्न ऐसा कहा था।

उसके बाद की गाथाओं और टीका के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वहाँ पर पर्याय के नाम पर असमानजातीयद्रव्यपर्याय की ही चर्चा है। इस बात की विस्तृत चर्चा पहले हो चुकी है।

इसके बाद यहाँ पुन: आचार्यदेव मनुष्य, देव, नारकी, आदि को व्यवहारजीव कहकर उसी असमानजातीयद्रव्यपर्याय की मुख्यता से बात कर रहे हैं; क्योंकि मनुष्यजीव में जीव और अनंत पुद्गल परमाणुओं का पिण्ड शामिल है।

इसप्रकार इस सम्पूर्ण प्रकरण में देहदेवल में विराजमान देह से भिन्न भगवान आत्मा की ही चर्चा है।

इस प्रकरण की पहली गाथा की टीका में कहते हैं कि ह्न इस समस्त लोक में स्व और पर को जानने की शक्तिरूप सम्पदा से सम्पन्न, अचिन्त्य महिमा का धारक जीव ही जानने का काम करता है; अन्य कोई द्रव्य जानने का काम नहीं करता। इसप्रकार शेष द्रव्य ज्ञेय ही हैं और जीवद्रव्य ज्ञेय तथा ज्ञान है ह्न इसप्रकार ज्ञान और ज्ञेय का विभाग है।

ध्यान रहे प्रमेयत्वगुण से सम्पन्न अपने ज्ञानस्वभावी आत्मा को परज्ञेयों से ही भिन्न जानना है, स्वज्ञेयरूप निजात्मा से नहीं।

जो तीन काल में कम से कम चार प्राणों से जीवे, वह व्यवहारजीव है। इन्द्रिय, बल, आयु और श्वासोच्छवास ह्न ये चार प्राण हैं। इन्द्रियों में पाँचों इन्द्रियाँ और बल में तीन बल शामिल होने से चार प्राणों से जीता है, सो जीव से तात्पर्य यही है कि जो दस प्राणों से जीता है, वह जीव है।

ये दस प्राण देह के ही अंग हैं। स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण ह्न ये पाँचों इन्द्रियाँ तथा मन, वचन और काय ह्न ये तीन बल तथा श्वासोच्छवास ह्न ये सब देह के ही अंग हैं। देह और आत्मा के सुनिश्चित काल के संयोग का नाम आयु होने से आयु भी देह में शामिल है।

इसप्रकार जो देह और आत्मा की मिली हुई असमानजातीयद्रव्यपर्याय है, उसका नाम ही व्यवहारजीव है। **(क्रमश:)**

सागर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव का विज्ञापन

सागर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव का विज्ञापन

(नींव का पत्थर, पृष्ठ 3 का शेष...)

अतः इस अकर्तावाद के सिद्धान्त को धर्म का मूल आधार या धर्म का प्राण भी कहा जाय तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी।

वस्तुतः पर में अकर्तृत्व की यथार्थ श्रद्धा रखने वाले का तो जीवन ही बदल जाता है। वह अन्दर ही अन्दर कितना सुखी, निरभिमानी, निर्लोभी और निराकुल हो जाता है, अज्ञानी तो उसकी कल्पना भी नहीं कर सकता।

समयसार के अकर्तावाद का तात्पर्य यह है कि ह्न जो प्राणी अपने को अनादि से परद्रव्य का कर्त्ता मानकर राग-द्वेष-मोह भाव से कर्मबन्धन में पड़कर संसार में परिभ्रमण कर रहा है, वह अपनी इस मूल भूल को सुधारे और अकर्तृत्व की श्रद्धा के बल से राग-द्वेष का अभाव कर वीतरागता प्रगट करे; क्योंकि वीतराग हुए बिना पूर्णता, पवित्रता व सर्वज्ञता की प्राप्ति संभव नहीं है। एतदर्थ अकर्तावाद को समझना अति आवश्यक है।

वस्तुतः कर्ता-कर्म सम्बन्ध दो द्रव्यों में होता ही नहीं, एक ही द्रव्य में होता है। इस विषय में आचार्य अमृतचन्द्र का निम्नांकित पद्य द्रष्टव्य है ह्न

''यः परिणमति स कर्ता, यः परिणामों भवेतु तत्कर्म।
या परिणमति क्रिया सा, त्रयमपि भिन्नं न वस्तुतया।।५१।।

जो परिणमित होता है, वह कर्ता है, जो परिणाम होता है, उसे कर्म कहते हैं और जो परिणति है, वह क्रिया कहलाती है, वास्तव में तीनों भिन्न नहीं है।

इस कलश से स्पष्ट है कि जीव और पुद्‌गल में कर्ता-कर्म सम्बन्ध नहीं है। वस्तुतः कर्तृ-कर्म सम्बन्ध वहीं होता है, जहाँ व्याप्य-व्यापक भाव या उपादान-उपादेय भाव होता है। जो वस्तु कार्यरूप परिणत होती है वह व्यापक है, उपादान है तथा जो कार्य होता है वह व्याप्य है, उपादेय है।

यदि आत्मा परद्रव्यों को करे तो नियम से वह उनके साथ तन्मय हो जाये, पर तन्मय नहीं होता, इसलिए वह उनका कर्ता नहीं है, वीतरागता प्राप्त करने के लिए अकेला अकर्ता होना ही जरूरी नहीं है; बल्कि अपने को पर का अकर्ता जानना, मानना और तद्‌रूप आचरण करना भी जरूरी है। एक-दूसरे के अकर्ता तो सब हैं ही, पर भूल से अपने को पर का कर्ता मान रखा है, इस कारण अज्ञानी की अनन्त आकुलता और क्रोधादि कषायें कम नहीं होतीं। अन्यथा इस अकर्तृत्व सिद्धान्त की श्रद्धा वाले व्यक्ति के विकल्पों का तो स्वरूप ही कुछ इस प्रकार का होता है कि उसे समय-समय पर प्रतिकूल परिस्थितिजन्य अपनी आकुलता कम करने के लिए वस्तु के स्वतंत्र परिणमन पर एवं उस परिणमन में अपनी अकिंचित्करता के स्वरूप के आधार पर ऐसे विचार आते हैं कि जिनसे उसकी आकुलता सहज ही कम हो जाती है। उदाहरणार्थ, वह सोचता है कि ह्न

(अ) यदि मैं अपने शरीर को अपनी इच्छानुसार परिणमा सकता तो जब भी अपशकुन की प्रतीक मेरी बाईं आँख फड़कती है, उसे तुरन्त बन्द करके शुभ शकुन की प्रतीक दायी आँख क्यों नहीं फड़का लेता?

(ब) यदि मैं अपने प्रयत्नों से शरीर को स्वस्थ रख सकता हूँ तो प्रयत्नों के बावजूद भी यह अस्वस्थ क्यों हो जाता है? जब किसी को केंसर, कोढ़ एवं दमा-श्वांस जैसे प्राणघातक भयंकर दुःखद रोग हो जाते हैं तो वह उन्हें अपने प्रयत्नों से ठीक क्यों नहीं कर लेता?

(स) यदि मैं किसी का भला कर सकता होता तो सबसे पहले अपने कुटुम्ब का भला क्यों न कर लेता? फिर मेरे ही परिजन-पुरजन दुःखी क्यों रहते? मैंने अपनी शक्ति अनुसार उनका भला चाहने एवं भला करने में कसर भी कहाँ छोड़ी, पर मेरी इच्छानुसार मैं किसी का कुछ भी तो नहीं कर सका।

(द) इसीप्रकार, यदि कोई किसी का बुरा या अनिष्ट कर सकता होता तो आज संभवतः यह दुनिया ही इस रूप में न होती, सभी कुछ नष्ट-भ्रष्ट हो गया होता; क्योंकि दुनिया तो राग-द्वेष का ही दूसरा नाम है, ऐसा कोई व्यक्ति नहीं जिसका कोई शत्रु न हो; पर आज जगत यथावत् चल रहा है। इससे स्पष्ट है कि कोई किसी के भले-बुरे, जीवन-मरण व सुख-दुःख का कर्ता-हर्ता नहीं है। जो होना होता है वही होता है, किसी के करने से नहीं होता।

लोक में सभी कार्य स्वतः अपने-अपने षट्कारकों से ही सम्पन्न होते हैं। उनका कर्ता-धर्ता मैं नहीं हूँ। ऐसी श्रद्धा से ज्ञानी पर के कर्तृत्व के भार से निर्भार होकर अपने ज्ञायकस्वभाव का आश्रय लेता है। यही आत्मानुभूति का सहज उपाय है।

प्रत्येक द्रव्य व उनकी विभिन्न पर्यायों के परिणमन में उनके अपने-अपने कर्ता, कर्म, करण आदि स्वतंत्र षट्कारक हैं, जो उनके कार्य के नियामक कारण हैं। ऐसी श्रद्धा का बल बढ़ने से ही ज्ञानी ज्यों-ज्यों इन बहिरंग (पर) षट्कारकों की प्रक्रिया से पार होता है, त्यों-त्यों उसकी आत्मशुद्धि में वृद्धि हो जाती है।[१]

जब कार्य होना होता है, तब कार्य के नियामक अंतरंग षट्कारक, पुरुषार्थ, काललब्धि एवं निमित्तादि पाँचों समवाय स्वतः मिलते ही हैं और नहीं होना होता है तो अनंत प्रयत्नों के बावजूद भी कार्य नहीं होता तथा तदनुरूप कारण भी नहीं मिलते।

मिथ्यात्व एवं अनन्तानुबंधी कषाय के अभाव से अकर्तावाद सिद्धान्त की ऐसी श्रद्धा हो जाती है कि जिससे उसके असीम कष्ट सीमित रह जाते हैं। जो विकार शेष बचता है, उसकी उम्र भी लम्बी नहीं होती।

बस, इसलिए तो आचार्य कुन्दकुन्द ने समयसार में जीवाजीवाधिकार के तुरन्त बाद ही यह कर्ताकर्म अधिकार लिखने का महत्वपूर्ण निर्णय लिया है। इसमें बताया गया है ह्न जगत का प्रत्येक पदार्थ पूर्णतः स्वतंत्र है, उसमें होनेवाले नित्य नये परिवर्तन या परिणमन का कर्ता वह पदार्थ स्वयं है। कोई भी अन्य पदार्थ या द्रव्य किसी अन्य पदार्थ या द्रव्य का कर्ता-हर्ता नहीं है।

समयसार के कर्ता-कर्म अधिकार का मूल प्रतिपाद्य ही यह है कि परपदार्थ के कर्तृत्व की तो बात ही क्या कहें, अपने क्रोधादि भावों का कर्तृत्व भी ज्ञानियों के नहीं है। जबतक यह जीव ऐसा मानता है कि क्रोधादि का कर्ता व क्रोधादि भाव मेरे कर्म हैं, तब तक वह अज्ञानी है। तथा जब स्व-संवेदन ज्ञान द्वारा क्रोधादि आस्रवों से शुद्धात्म-स्वरूप को भिन्न जान लेता है, तब ज्ञानी होता है। **(क्रमशः)**

वाणी का संयम बहुत जरूरी

(दिनांक 16 से 21 नवम्बर, 2005 तक किशनगढ़ (राज.) में हुये पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव में केवलज्ञान कल्याणक के अवसर पर सामाजिक सद्भावना एवं शांति के लिये डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल द्वारा दिये गये मार्मिक उद्बोधन का महत्त्वपूर्ण मार्मिक अंश यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। ह्व सम्पादक)

पंचकल्याणक महोत्सव समापन की ओर है। इस प्रसंग पर मैं २-३ मार्मिक बातें आपसे कहना चाहता हूँ, इसके बाद केवलज्ञान कल्याणक की चर्चा करूँगा।

पहली बात तो यह है कि हम अपनी पीठ को कितनी ही क्यों न ठोकें, लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि पूज्य गुरुदेवश्री का पुण्य प्रताप अभी जीवित है; इसीलिये हमें यह सफलता मिली है।

हम तो उन आचार्यों के शिष्य हैं जो समयसार जैसा ग्रन्थ और आत्मख्याति जैसी टीका लिखकर भी अन्त में लिखते हैं कि मैंने कुछ नहीं किया। अक्षर मिलकर शब्द बन गये, शब्द मिलकर वाक्य बन गये और वाक्य मिलकर ये पवित्र शास्त्र बन गया। अमृतचन्द्र ने कुछ किया है ह्व ऐसा मानकर हे शिष्य ! तुम मोह में मत नाचो !

हमें बहुत प्रसन्नता है कि आज भगवान नेमिनाथ को केवलज्ञान प्रकट हो गया है। हमारा यह पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव बहुत शंकाओं और आशंकाओं के बीच अधिकतम सफलताओं के साथ सम्पन्न होने जा रहा है।

इस प्रसंग पर मैं एक बात कहना चाहता हूँ कि जब किसी पेड़ पर फल लगते हैं अर्थात् वह पेड़ सफल होता है तो नम जाता है, नीचे झुक जाता है। यदि ये हमारा पंचकल्याणक महोत्सव सफल हुआ है तो हमारे लोगों को भी अपने को विनम्र बनाना चाहिये। उसमें यह नहीं समझना चाहिये कि हम विनम्र बने तो हमारी गर्दन नीची हो गई ।

अभी पाँच मिनिट पहले एक बच्ची ने एक गीत (छन्द-मुक्तक) सुनाया । कोई ज्यादा अच्छी बात तो नहीं कही, पर आप सबने भी तालियाँ पीट दी, मुझे बहुत दुख हुआ।

ऐसे मंगल अवसर पर सहयोग करनेवालों को याद किया जाता है या असहयोग करनेवालों को ? मेरे कहने का आशय यह है कि हमारे जीवन में विनम्रता आनी चाहिये; क्योंकि हम सफल हुये हैं।

हम भगवान के मंदिर में भगवान की प्रतिमा विराजमान कर रहे हैं, हमारे हृदय मंदिर में भी भगवान विराजमान हुये हैं, भगवान आत्मा विराजमान हुआ है।

जहाँ हृदय में भगवान विराजमान हुये हों, वह हृदय कैसा होना चाहिये ? मैं आपसे इसकी कल्पना करने की अपेक्षा रखता हूँ।

सामाजिक दृष्टि से समाज सर्वोच्च है; उससे कटकर रहने की हम कल्पना भी नहीं कर सकते, करना भी नहीं चाहिये। हमें हर बात को नेगेटिवरूप में नहीं देखना चाहिये।

जैसा कि कल समाज में दिगम्बर तेरापंथी-बीसपंथी का जो सामूहिक भोज हुआ, उसमें उन लोगों को भी आमंत्रण दिया गया, जिनको पहले जात-बाहर करने की धमकियाँ दी गई थी। इसलिये समझना चाहिये कि हमारे इस पवित्र यज्ञ से उनके हृदय में भी कुछ अच्छे भाव जगे हैं, उसका यह परिणाम है।

हमें इस बात को राजनीति नहीं समझकर पवित्र हृदय से स्वीकार करना चाहिये। हमारे बारे में समाज को जो भी शिकायतें हैं, जिनके कारण ये थोडी-बहुत तकलीफें खड़ी होती हैं ह्व ऐसी बातों से हमे बचना चाहिये; किन्तु जो तत्त्वज्ञान की मान्यता है, उसे तो हम किसी भी कीमत पर नहीं छोड़ सकते हैं। चाहे हमें सब कुछ छोड़ना पड़े।

लेकिन मैं यह कहना चाहता हूँ कि हम अपनी बात को विनम्रता पूर्वक भी बड़ी दृढता के साथ रख सकते हैं, उसके लिये कठोर शब्दों की कोई आवश्यकता नहीं है। इससे जो अनावश्यक तकलीफें खड़ी होती हैं; वे खड़ी नहीं होगी। पर जो होनी है, वो तो होकर ही रहेगी।

हम अलग रहकर भी समाज के अंग हैं और समाज में रहकर भी अलग हैं। अलग इसलिये हैं कि हम निर्विघ्न अपना पूजा-पाठ स्वाध्याय करना चाहते हैं; क्योंकि हमें दूसरी जगह ये कार्य निर्विघ्न करने का अवसर प्राप्त नहीं होता।

हम एक साथ इसलिये हैं कि हमारा सम्मेदशिखर एक साथ है, हमारा गिरनार एक साथ है, हमारे भगवान महावीर एकसाथ हैं ह्व उनको तो हम नहीं बांट सकेंगे।

यह हमारी मजबूरी समझों या जो कुछ भी है, हम न अलग रह सकते हैं न एक साथ रह सकते हैं। हमको एक साथ रहकर भी अलग रहना सीखना होगा और अलग रहकर भी एकसाथ रहना सीखना होगा।

प्रदीपजी चौधरी ने इतना बढिया काम किया है, उन्हें आप लोगों ने भरपूर शाबाशी भी दी है और वह काम शाबाशी के काबिल है भी; लेकिन फिर भी प्रदीपजी से और बेटी कुसुम से मैं यह कहना चाहता हूँ कि अब अपने मुंह से एक भी ऐसा शब्द नहीं निकालना, जो हमारी इस प्रतिष्ठा की गरिमा को कम करे।

पूरा दिगम्बर जैन समाज अपना है और अपना रहेगा। अब आपको क्या तकलीफ है; आपका मंदिर है, पूजा करिये, पाठ करिये, स्वाध्याय करिये, चर्चा करिये; पर इसमें कठोर शब्दों की क्या जरूरत है ?

मेरे हृदय में यह विकल्प इसलिये उठा है; क्योंकि मैं बहुत दिनों से ऐसी बातें सुनता आ रहा हूँ कि यदि ऐसा नहीं होता तो ऐसा हो जाता। आपके कानों में भी ऐसी बातें आई होगी। अब जो हो गया, उसकी मैं बात नहीं करता; लेकिन कल से ऐसा नहीं होना चाहिये। सामनेवाले भले ही भाषा समिति छोड दें; किन्तु हमें भाषा समिति नहीं छोडना चाहिये।

मैं सच्चे दिल से आपसे यह आग्रह करना चाहता हूँ कि आपकी-हमारी वाणी बहुत मीठी होनी चाहिये, बहुत प्यारी होनी चाहिये। विनम्रभाषा में भी दृढता पूर्वक इंकार किया जा सकता है, अपने सिद्धान्तों पर अडिग रहा जा सकता है।

हमारे अस्तित्व के लिये हमें पंचपरमेष्ठी की शरण के अतिरिक्त किसी की भी शरण की आवश्यकता नहीं है।

ऐसा होने पर भी हमें सबसे हिल-मिलकर रहना चाहिये। जब हम अजैनियों से मिलकर रह सकते हैं; मुसलमान, ईसाई, हिन्दू भाईयों से मिलकर रह सकते हैं तो क्या अपने जैन भाईयों से मिलकर नहीं रह सकते ? सामनेवालों की तरफ से कुछ भी हो, हम ठण्डे रहेंगे तो सब मामला बहुत जल्दी ठण्डा हो जायेगा।

पुखराज पहाड़िया ने कहा कि सब २१ नवम्बर तक का झगड़ा है, २१ तारीख के बाद सब ठण्डा हो जायेगा।

मेरे से उनकी पकड़ ज्यादा गहरी लगती है। मैं तो समझता था कि माहौल को ठण्डा होने में महिने-दो- महिने लग जायेंगे; जबकि उन्हें तो २१ तारिख के बाद ही मामला ठण्डा होने का भरोसा था ।

लेकिन हम दोनों ही फेल हो गये और २१ तारिख से पहले ही मामला ठण्डा हो गया। इसलिये अब हमें पुरानी सब बातें भूलकर विनम्रता एवं समताभाव का रास्ता अपनाते हुये अपने जीवन का कल्याण करना चाहिये।

बस इतनी ही बात मैं आप सबसे कहना चाहता हूँ। ●

रजिस्ट्रेशन आर. एन. आई. 31109/77

वैराग्य समाचार

1. **पालडी (अहमदाबाद-गुज.) निवासी** श्री चुन्नीलालजी दोशी का दिनांक 12 नवम्बर, 2005 को शान्तपरिणामों पूर्वक देहावसान हो गया है। पूज्य गुरुदेवश्री के सान्निध्य में आपने अपना अधिकांश समय व्यतीत किया। आप धर्मप्रेमी एवं स्वाध्यायी थे। पालडी एवं खाडिया दिगम्बर जैन मन्दिर का निर्माण भी आपके द्वारा कराया गया।

2. श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय के स्नातक पण्डित सौरभकुमारजी शास्त्री फिरोजाबाद (उ.प्र.) के पिताश्री श्रीमान् संतोषकुमारजी जैन का दिनांक 20 नवम्बर, 2005 को अल्पायु में ही देहावसान हो गया। आप अत्यन्त स्वाध्यायीएवं धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे।

3. श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय के स्नातक पण्डित विजयकुमारजी बोरालकर वाघजाली (महा.) के पिताश्री श्रीमान् लक्ष्मणजी बोरालकर का दिनांक 10 नवम्बर, 2005 को शांतपरिणामपूर्वक देहावसान हो गया। आप सरलस्वभावी थे।

4. **सुसनेर (शाजापुर-म.प्र.) निवासी** श्री केशरीसिंहजी पाण्डे की माताजी श्रीमती रतनबाईजी पाण्डे का दिनांक 10 नवम्बर, 2005 को 94 वर्ष की आयु में शान्तपरिणामपूर्वक देहावसान हो गया। आप धार्मिक प्रवृत्ति की स्वाध्यायप्रिय महिला, आपका जीवन वैराग्यमय था। आपकी स्मृति में जैनपथप्रदर्शक समिति को 251/- रुपये प्राप्त हुये हैं।

दिवंगत आत्मायें शीघ्र ही चतुर्गति के दुःखों से छूटकर अभ्युदय को प्राप्त हो ह्व यही भावना है।

सारे जैन समाज के लिये श्रद्धा पात्र

श्री अर्हंतगिरि दि. जैन मठ, तिरुमलै (त.ना) के **भट्टारक स्वस्तिश्री धवलकीर्ति** स्वामीजी द्वारा **डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल** को **विद्यावारिधि** की उपाधि प्राप्त होने पर लिखा गया पत्र ह्व

''आप अपने आत्मानंद तत्त्वज्ञानोपयोग में सानन्द होंगे। सम्पूर्ण जैन समाज की एक मात्र प्रतिनिधि संस्था **भारत जैन महामण्डल** की ओर से आपको **विद्यावारिधि** की उपाधि से सम्मानित किये जाने के समाचार अनेक पत्रिकाओं के माध्यम से ज्ञात हुये, जानकर अति आनंद हुआ।

मण्डल ने आपको सम्मानित करके सारे जैन समाज को ही नहीं, अपितु जैन आगम को भी उज्ज्वल स्थान में पहुँचा दिया। वास्तव में आप जैन साहित्य सृजन का कार्य करके **सारे जैन समाज के लिये श्रद्धा के पात्र** बन गये हैं। जैन समाज आपको जितना भी सम्मानित करे, वह कम है; क्योंकि आप स्वयं साहित्य सृजन के प्रतिरूपक हैं।

भगवान से यही प्रार्थना करते हैं कि आपका स्वास्थ्य हमेशा अच्छा रहे, आपके तत्त्वभण्डार से समस्त जीवों का उद्धार होता रहे। देश के कोने-कोने में आपका तत्त्वज्ञान एवं यशकीर्ति हवा जैसा फैलता रहे। जैसे पानी में दूध मिलाने से सारा पानी दूध जैसा दिखता है, दूध कहलाता है; वैसे ही आपके साहित्य प्रचार से सारा संसार, संसार होते हुये भी संसार न दिखे। नित्यानंद आत्मानंद, ज्ञानानन्द स्वसिद्धानंद जैसा लगता रहे। आप अपने तत्त्वज्ञान के प्रचार की फैक्ट्री में हमें सब एजेन्सीज बनकर रहने का मौका देते रहें। यही आपसे अपेक्षा है। आत्म कल्याण ! **ह्व धवल कीर्ति** ''

लंदन में होनेवाले पंचकल्याणक का

मङ्गल आमंत्रण

हार्दिक आमन्त्रण अहो ! साधर्मी गुणखान।
आवश्यक शुभ आगमन, उत्सव महिमावान।।
भारत के बाहर ब्रिटेन में लन्दन शहर बसा अभिराम।
जिसमें सौ से अधिक कुटुम्ब मुमुक्षु जनों के हैं गुणखान।।
गुरु कहान की मङ्गल वाणी के रसिक सभी नर-नार।
वर्षों से बह रही निरन्तर तत्त्वज्ञान की निर्मल धार।।
सुन्दर जिनमन्दिर बनवाया महावीर प्रतिमा अभिराम।
वीतरागता रस बरसाती पार्श्वनाथ प्रतिमा गुणखान।।
आज हमारे आँगन में है पञ्चकल्याणक मङ्गलकार।
साधर्मी जन सभी पधारो भोगो निज आनन्द अपार।।
चार अगस्त की मङ्गल बेला में उत्सव होगा प्रारम्भ।
नौ अगस्तको जिनमन्दिर में पधरायेंगे श्री जिनबिम्ब।।
दो सौ वर्षों तक था जिनका भारत भूमि पर साम्राज्य।
आओ उनकी भू पर जिनशासन का ध्वज लहराये आज।।

डॉ. भारिल्ल के आगामी कार्यक्रम

26 दिस. से 01 जन., 2006	कोलकाता	पंचकल्याणक
14 से 18 जनवरी, 2006	सागर	पंचकल्याणक
19 जनवरी, 2006	निसईजी (म.प्र.)	मेला
04 से 10 फरवरी, 2006	कोटा	पंचकल्याणक
09 से 26 मई, 2006	देवलाली	प्रशिक्षण-शिविर
26 मई से 16 जुलाई, 06	विदेश	धर्मप्रचारार्थ
23 जुलाई से 1 अगस्त,06	जयपुर	शिक्षण-शिविर
04 से 09 अगस्त, 2006	लंदन	पंचकल्याणक
20 से 26 अगस्त, 2006	मुम्बई	श्वेताम्बर पर्यूषण

जैनपथप्रदर्शक (पाक्षिक) दिसम्बर (द्वितीय)2005
J. P. C. 3779/02/2003-05

प्रति,

सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल** शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., बी.एड.
प्रबन्ध सम्पादक : **पण्डित संजीवकुमार गोधा,**डबल एम.ए. जैनविद्या व धर्मदर्शन तथा इतिहास, नेट एवं **पण्डित जितेन्द्र वि. राठी,** साहित्याचार्य
प्रकाशक एवं मुद्रक : **ब्र. यशपाल जैन** द्वारा जैनपथप्रदर्शक समिति के लिए जयपुर प्रिण्टर्स प्रा.लि., एम. आई. रोड, जयपुर से मुद्रित तथा त्रिमूर्ति कम्प्यूटर्स, ए-4, बापूनगर, जयपुर से प्रकाशित।

यदि न पहुँचे तो कृपया निम्न पते पर भेजें -
ए- 4 बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)
फोन : (0141) 2705581, 2707458
तार : त्रिमूर्ति, जयपुर **फैक्स :** 2704127